



बालकोंकी धर्म-शिक्षा ।

द्वितीय भाग ।

पाठ १.

उत्तिष्ठत । जाग्रत । प्राप्य वरान्निबोधत ॥

कठ. उ. ३।१४.

अर्थ—(उत्तिष्ठत) उठो, (जाग्रत) जागो,
और (वरान्) श्रेष्ठोंको (प्राप्य) प्राप्त करके
(नि-बोधत) ज्ञान प्राप्त करो ॥

भावार्थ—सुस्ति छोड़ दीजिए । अपने हित और
अहितका विचार कीजिए । और सज्जनोंके पास जाकर
उनसे ज्ञान प्राप्त कीजिए । अर्थात् ज्ञानी बन जाइए ॥

— उमाचार्म धर्म धर शार्म
इ. वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

पाठ २.

आत्मना विन्दते वीर्यम् ।
विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥

केन. उ. २।१२.

अर्थ—(आत्मना) आत्मज्ञानसे (वीर्य) बल (विन्दते) प्राप्त होता है । तथा (विद्यया) विद्यासे (अ-मृतं) अमरपन (विन्दते) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ—आत्माका ज्ञान प्राप्त होनेसे आत्मिक और मानसिक बल बढ़ता है । आत्मविश्वास अर्थात् अपने विषयमें भरोसा प्राप्त होता है । तथा विद्या पढ़नेसे अमरपन अर्थात् देवपन प्राप्त हो सकता है । इसलिये सबको विद्या पढ़ना चाहिए ॥

पाठ ३.

इह चेदवेदीथ सत्यमस्ति ।

न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ॥

केन उ. २।१३.

अर्थ—जो (सत्यं) सत्य (अस्ति) है, उसका (चेत्) यदि (अथ इह) यहां (अवेदीत्) ज्ञान होगा, तो बहुत अच्छा है । परंतु (इह) यहां (न चेत् अवेदीत्) यदि ज्ञान न होगा तो (महती) बड़ी (विनष्टिः) हानी है ॥

भावार्थ—सत्यही सब कुछ श्रेष्ठ है ऐसा ज्ञान यदि होगया तो बडा अच्छा है । परंतु यदि यह ज्ञान न हुआ तो बडी हानी है । इस लिये सबको सत्यपर विश्वास रखना उचित है ॥

पाठ ४.

अन्धं तमः प्रविशन्ति ।

येऽविद्यामुपासते ॥

ईश. उ. ९.

अर्थ—(ये) जो लोक (अ-विद्यां) अविद्याके (उपासतै) पास रहते हैं वे (अंधंतमः) घने अंधेरेमें (प्रविशन्ति) चले जाते हैं ॥

भावार्थ—जो विद्या नहीं प्राप्त करते, और अविद्यामेंहि रहते हैं, उनको बड़ा दुःख होता है । इसलिये यदि कष्टको दूर करना इष्ट है तो सबको सत्य विद्याका अभ्यास करना उचित है ।



पाठ ५.

बहूनामेमि प्रथमो ।

बहूनामेमि मध्यमः ॥

कठ उ. १।४.

अर्थ—(बहूनां) अनेकोंमें मैं (प्रथमः) पहिला (एमि) होता हूं । तथा (बहूनां) बहुतोंमें मैं (मध्यमः) बीचका (एमि) होता हूं । तात्पर्य किसी प्रकारभी मैं नीच नहीं होता हूं ॥

भावार्थ—सबको ऐसी इच्छा धरना उचित है, कि मैं पहिला अर्थात् उच्च, किंवा मध्यम अर्थात् बीचकी अवस्थाका बनूं । सबको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि अपनी अवस्था कभी न गिर जावे ॥



पाठ ६.

सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ॥

अथ. १९।४०।१.

अर्थ—(सरस्वती) विद्या (मन्यु-मन्तं)
उत्साह युक्त मनुष्यके पास (जगाम) जाती है ॥

भावार्थ—जो उत्साही, उद्योगी और पुरुषार्थी
सज्जन होते हैं उनके पासही विद्या आती है । परंतु जो
उदास, सुस्त और आलसी दुर्जन होते हैं उनके पास
विद्या नहीं आती । इस लिये सबको पुरुषार्थ करके
विद्या अवश्य प्राप्त करना चाहिए क्योंकि विद्यासेही
सबका भला होता है ॥



(९)
पाठ ७.

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति ॥

ऐत. ब्रा. ७।१५.

अर्थ—(अनाश्रान्ताय) जो पुरुषार्थ नहीं करता
उसको (श्रीः) धन (न अस्ति) नहीं प्राप्त होता ।

भावार्थ—जो परिश्रम करता है, जो उद्योग
करता है, जो पुरुषार्थ करता है, उसीको सब प्रकारका
धन, शोभा, ऐश्वर्य, तेज, यश आदि प्राप्त होता है ।
जो परिश्रम नहीं करता उसको यशकी प्राप्ति कभी नहीं
होती । इस कारण सदा सब लोकोंको परिश्रम करना
उचित है । आलस्य सब हानीयोंका कारण है, इसलिये
उसको दूर करना चाहिए ॥



पाठ ८.

य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ॥

उप. शांति ।

अर्थ—(ये) जो (उपनिषत्सु) तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंमें (धर्माः) धर्म कहे हैं (ते) वे (मयि) मेरे अंदर (सन्तु) रहें ॥

भावार्थ—जो तत्त्वज्ञानके श्रेष्ठ विद्याके ग्रंथोंमें मनुष्योंकी उन्नतिके साधक धर्म कहे हैं, वे सब मेरे अंदर स्थिर हो जावें । मेरा आचरण उन धर्मोंके अनुसारही सदा होता रहे । तथा उन धर्मोंके विरुद्ध मेरा आचरण न होवे । ऐसीही इच्छा सबको मनमें धारण करना चाहिए ॥



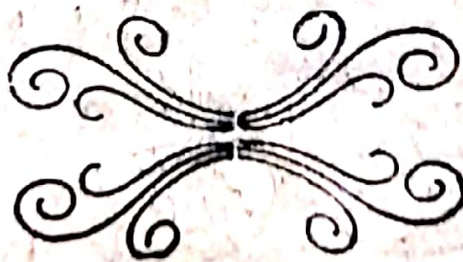
पाठ ९.

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु. ३४।१.

अर्थ—(मे) मेरा (तत्) वह (मनः) मन
(शिव-संकल्पं) पवित्र विचार करनेवाला (अस्तु)
होवे ॥

भावार्थ—अपने मनमें सदा शुभ और पवित्र विचार
ही आते रहें, तथा कभी बुरे विचार न आवें । ऐसा ही
सबको सदा प्रयत्न करना चाहिए । मनके अंदर जब
कभी बुरा विचार आ जावे तब उसको वहां ही रोकना
चाहिए । जिससे वैसा विचार फिर नहीं आजायगा ॥



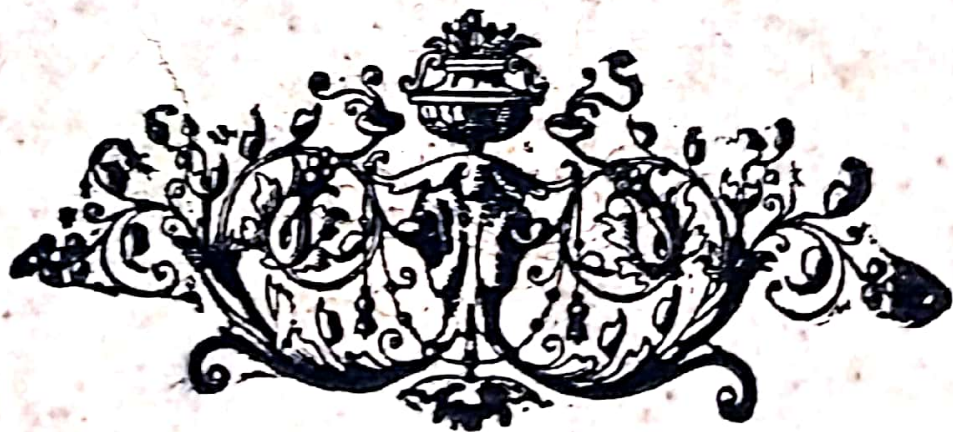
पाठ १०.

वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ॥

ऋ. ९।७३।७.

अर्थ—(कवयः) कवी और (मनीषिणः)
ज्ञानी सुविचारसे अपनी (वाचं) वाणीको (पुनन्ति)
पवित्र करते हैं ॥

भावार्थ—जो दूर दृष्टि होते हैं वे कवी होते हैं
और जो अपने मनको स्वाधीन रखते हैं, वे मनीषी हुआ
करते हैं । ये सब श्रेष्ठ सज्जन अपनी वाणीकी पवित्रता
सुविचारके साथ करते हैं । अर्थात् कभी बुरे विचारका
वाणीसे उच्चार नहीं करते ॥



पाठ ११.

वाचं वदत भद्रया ॥

अथ. ३।३०।३.

अर्थ—(भद्रया) शुभ (वाचं) वाणीको ही
(वदत) बोलीए ॥

भावार्थ—मनसे शुभ विचार कीजिए और वाणीसे
शुभ वाक्य बोलीए । आपके मुखसे कभी अशुभ शब्द
न बोला जावे । यदि आप अशुभ शब्द बोलेंगे तो आपकी
वाणी पतित हो जायगी और आपकी बड़ी हानी होगी ।
इसलिये इस विषयमें बड़ी सावधानी रखीए ॥



पाठ १२.

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति ।
तेन पूतिरन्तरतो मेध्या ॥

शत. ब्रा. १।१।१

अर्थ—(यत्) जो (अनृतं) असत्य (वदति)
बोलता है (वै) इस लिये (पुरुषः) मनुष्य (अ-
मेध्यः) अपवित्र है । (तेन) इस हेतुसे (अंतरतः)
अंदरसे (पूतिः मेध्या) पवित्रता करना उचित है ।

भावार्थ—जो असत्य बोलता है वह अपवित्र बनता
है । अर्थात् जो सत्य बोलता है वह पवित्र होता है ।
सत्य ही पवित्रता है । इसलिये सबको उचित है कि वह
कभी असत्य न बोले और सदा सत्य ही बोले ॥



पाठ १३.

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।

तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥

शत. ब्रा. १।१।४

अर्थ—(इदं) यह (अहं) मैं (अनृतात्) असत्यको छोड़कर (सत्यं) सत्यको (उपैमि) पास करता हूं । (तत्) इससे वह (मनुष्येभ्यो) मनुष्योंसे (देवान्) देवोंके (उपैति) पास पहुंचता है ।

भावार्थ—सबको उचित है कि असत्यको छोड़ दें और सत्यका ग्रहण करें । ऐसा करनेसे वह मनुष्य साधारण मनुष्योंसे श्रेष्ठ बनता है और देवत्व प्राप्त करता है । इतना सत्यका महत्व है । इस लिये सत्यको कोई कभी न छोड़े ।

पाठ १४.

एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम् ।
तस्मात्ते यशो यशोह भवन्ति ॥

शत. १।१।१.

अर्थ—(यत्) जो (सत्यं) सत्य है (एतत् ह वै) वह ही निश्चयसे (व्रतं) व्रत (देवाः) देवता लोक (चरन्ति) आचरते हैं । (तस्मात्) उससे (ते) वे (यशः यशः) बडे यशस्वी (ह) निश्चयसे (भवन्ति) होते हैं ।

भावार्थ—सत्यका पालन करना ही देवोंका व्रत है । जो देव होते हैं, वे सत्यके पालनके अपने व्रतको कभी नहीं तोड़ते । सत्यका जो पालन करते हैं वे यशस्वी, कीर्तिमान् और सुप्रसिद्ध होते हैं । इस लिये यशकी इच्छा करनेवाले सत्यका पालन करें ॥



पाठ १५.

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

यजु. अ. ३६।१८

अर्थ—हम सब (मित्रस्य) मित्रकी (चक्षुषा) दृष्टिसे सबको (समीक्षामहे) देखें ॥

भावार्थ—सब मनुष्य मित्रकी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखें । मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब पर दया करें । किसीको कष्ट न दें । जिस प्रकार मित्रके साथ बर्ताव किया जाता है उसी प्रकार सब प्राणियोंके साथ बर्ताव किया करें । मित्रकी दृष्टिसे सर्वत्र प्रेमकी वृद्धि होती है और इसीसे सबका कल्याण होता है ॥



पाठ १६.

किं पुण्यमिति ? ब्रह्मचर्यमिति ॥
 किं लौक्यमिति ? ब्रह्मचर्यमेवेति ॥

गोप. बा. २।९

अर्थ—(किं) कौनसा (पुण्यं) पुण्य है ? (ब्रह्म-
 चर्यं) ब्रह्मचर्य ही पुण्य है (किं लौक्यं) लोकोंके
 लिये हितकारक क्या है । ब्रह्मचर्य ही लोकोंके लिये
 हितकारक है ।

भावार्थ—अपना वीर्य धारण करना और ज्ञान प्राप्त
 करना ब्रह्मचर्यके व्रतमें होता है । इस ब्रह्मचर्यसे पुण्यकी
 प्राप्ति होती है और इसीसे सब लोकोंका हित हो सकता
 है । वीर्यका नाश न करनेसे बल, बुद्धि, आरोग्य, दीर्घ
 आयुष्य, तेज आदिकी प्राप्ति होती है ।

पाठ १७.

आप्यायन्तु ममांगानि वाक्प्राणश्चक्षुःश्रोत्र-
मथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ॥

उप. शांति ।

अर्थ—(मम) मेरे (अंगानि) सब अवयव
अर्थात् (चक्षुः) आंख (श्रोत्रं) कान आदि
(अथो) तथा (सर्वाणि) सब (इन्द्रियाणि)
इंद्रियां और (वाक्) वाणी (प्राणः) प्राण तथा
(बलं) बल आदि सब (आप्यायन्तु) बढ़ जाय ॥

भावार्थ—हर एक मनुष्यको अपने सब अवयव पुष्ट
और बलवान बनाना चाहिए अपने सब इंद्रियोंको अपना
अपना कार्य करनेमें समर्थ बनाना चाहिए । जिस प्रकारके
वर्तावसे अपनी शक्ति क्षीण होगी उस उस प्रकारका
वर्ताव कभी करना नहीं चाहिए । बलवान बनो और
निर्बलताको छोड़ दो ॥

पाठ १८.

ॐ क्रतो स्मर । कृतं स्मर ॥

ईश उ. १७

अर्थ—हे (क्रतो) प्रयत्नशील ! (ॐ स्मर)
परमेश्वरका स्मरण कर । तथा (कृतं) अपने किये हुए
कर्मोंका (स्मर) स्मरण कर ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तेरा स्वभाव पुरुषार्थरूप
बनाओ । तू नित्य परमेश्वरका स्मरण करो तथा प्रतिदिन
अपने किये हुए कर्मोंका स्मरण करो । दिनके कर्मोंकी
परीक्षा रात्रीके प्रारंभमें करो तथा रात्रीके कर्मोंकी समा-
लोचना प्रातःकाल करो । और जो न्यूनता होगी, उसको
दूर करो ॥



पाठ १९.

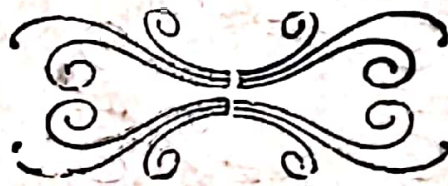
पापो नृषद्वरो जनः ।

इन्द्र इच्चरतः सखा ॥

ऐ. ब्रा. ७।१६

अर्थ—(नृ-षद्वरः) आलसी, सुस्त (जनः) मनुष्य ही (पापः) पापी है । (इत्) सचमुच (इन्द्रः) प्रभू (चरतः) पुरुषार्थ करनेवालेका (सखा) मित्र होता है ॥

भावार्थ—आलस्य और सुस्ती ही पाप है । जो मनुष्य पुरुषार्थ नहीं करता वह पापी होता है । जो मनुष्य पुरुषार्थ करता रहता है उसकी सहायता परमेश्वर करता है । इसलिये सदा पुरुषार्थ करना चाहिए ॥



पाठ २०.

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे
भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ॥

ऐ. ब्रा. ७।१९

अर्थ—(चरतः) चलनेवालेकी (जंघे) जांघें
(पुष्पिण्यौ) पुष्ट होती हैं । तथा पुरुषार्थी मनुष्यका
(आत्मा) आत्मा (भूष्णुः) उन्नति प्राप्त करनेवाला
और (फल-ग्रहिः) फल मिलनेतक कार्य करनेवाला
होता है ॥

भावार्थ—व्यायाम करनेवालेका शरीर पुष्ट तथा
बलवान होता है । व्यायाम न करनेवालेका शरीर कमजोर
होता है । इसीप्रकार फल मिलनेतक पुरुषार्थ करनेसे उत्तम
अवस्था प्राप्त होती है ।



पाठ २१.

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः ।

श्रमेण प्रपथे हताः ॥

ऐ. ब्रा. ७।१५

अर्थ—(अस्य) इस मनुष्यके (सर्वे पाप्मानः) सब पाप (श्रमेण) परिश्रम करनेके कारण (प्र—पथे) मार्गमें (हताः) मरे हुए (शेरे) पडते हैं ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थ प्रयत्न करता है, उसके सब पाप और सब दोष थोड़े ही समयमें दूर होते हैं । पुरुषार्थी मनुष्यके पास पाप नहीं रहते । आलसी मनुष्यके पास ही सब पाप रहते हैं इस लिये किसीको आलसी नहीं बनना चाहिए ॥



पाठ २२.

पूर्णमदः पूर्णमिदं ।
पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥

बृ. उप. ९.

अर्थ—(अदः) वह ईश्वर (पूर्ण) परिपूर्ण है । तथा (इदं) यह विश्व भी (पूर्ण) परिपूर्ण है । क्योंकि (पूर्णात्) उस पूर्ण परमेश्वरसे ही यह (पूर्ण) पूर्ण जगत् (उदच्यते) उदय पाता है ॥

भावार्थ—परमेश्वर, जो सब जगत्का प्रभु है, पूर्ण है । सब प्रकारसे पूर्णता उसमें है । और किसी प्रकारकी भी न्यूनता उसमें नहीं है । उसका बनाया यह जगत् भी पूर्ण है । अर्थात् जैसा चाहीए वैसा है ।



पाठ २३.

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ।
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥

श्वेता. उ. ६।११

अर्थ—(एकः देवः) एक ही ईश्वर (सर्व-भूतेषु) सब भूतोंमें (गूढः) गुप्त है । वह (सर्व-व्यापी) सर्वव्यापक और (सर्व-भूत-अन्तर्-आत्मा) सब भूतोंके अंदरका आत्मा है ॥

भावार्थ—एक ही परमात्मा संपूर्ण जगतके पदार्थोंमें व्यापक है । वह सर्वत्र व्यापक होता हुआ भी छिपा हुआ है अर्थात् गुप्त है । सब भूतोंमें अंतर्गामी आत्मा वह ही एक है । वह किसी स्थानपर नहीं ऐसा नहीं है ।



पाठ २४.

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा ॥

ऋ. १।३२।३९.

अर्थ—(यातः) चलनेवाले और (अवसितस्य) स्थिर पदार्थोंका (इन्द्रः) परमेश्वर ही एक मात्र (राजा) राजा है ॥

भावार्थ—इस जगतमें दो प्रकारके पदार्थ हैं । एक चलनेवाले प्राणिमात्र और दूसरे स्थिर जैसे वृक्ष पत्थर आदि । इन सब पदार्थोंका राजा परमेश्वर ही है । इस लिये सबको परमेश्वरकी ही पूजा करना उचित है । उसको नमन करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥



पाठ २५.

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु
सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि
नावधितमस्तु मा विद्विषावहै ॥

अर्थ—(नौ) हमारा (अधितं) अध्ययन
किया हुआ ज्ञान (तेजस्वि) तेजस्वी (अस्तु)
रहे । वह ज्ञान (नौ) हमारा (सह अवतु) साथ
साथ रक्षण करे । (नौ) हमको (सह भुनक्तु)
साथ साथ भोजन देवे । उस ज्ञानसे हम (सह) मिल-
कर (वीर्यं) पराक्रम (करवावहै) करेंगे । और
(मा वि द्विषावहै) आपसमें लड़ाई नहीं करेंगे ॥

भावार्थ—हमारा ज्ञान ऐसा होवे कि जिससे हम
तेजस्वी तथा पराक्रमी बने; आपसमें न झगडते हुए और
अपना भोग प्राप्त करते हुए, अपनी रक्षा कर सकें ॥

पाठ २६.

चरन्वै मधु विन्दति ।

चरन्त्स्वादुमुदुंबरम् ॥

ऐ. ब्रा. ७।१५

अर्थ—(वै) निश्चयसे (चरन्) भ्रमण करने-
सेही (मधु) मधु, शहद (विन्दति) प्राप्त करता
है । तथा (चरन्) भ्रमण करनेसे ही (स्वादु)
मीठा (उदुंबरं) फल प्राप्त करता है ॥

भावार्थ—मधुमखीयां भ्रमण करनेसे ही मधु
इकट्ठा कर सकती हैं । तथा पक्षी भ्रमण करनेसे ही वृक्ष-
के मधुर फल प्राप्त कर सकते हैं । अर्थात् मनुष्य यदि
प्रयत्न करेंगे तो ही उत्तम अवस्था प्राप्त कर सकते हैं ॥



पाठ २७.

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं ।
यो न तंद्रयते चरन् ॥

ऐ. ब्रा. ७।१६

अर्थ—(सूर्यस्य) सूर्यकी (श्रेमाणं) शोभा
(पश्य) देखो (यः) जो सूर्य (चरन्) विचरता
हुआ कभी (न तंद्रयते) सुस्ती नहीं करता ॥

भावार्थ—सूर्य कभी थकता नहीं, कभी सुस्तीसे
ठहरता नहीं, कभी आलस नहीं करता; इस कारण उसकी
शोभा इस प्रकार बड़ी है । जो इस प्रकार पुरुषार्थ करेंगे,
सुस्ती और आलस्यका त्याग करेंगे उनका भी यश इसी
प्रकार बढ़ेगा ॥



पाठ २८.

अजैष्माद्यासनाम । चाभूमानागसो वयम् ॥

क्र. १०।१६४।५

अर्थ—(अद्य) आज ही (वयं) हम सब
(अजैष्म) विजय करेंगे और (असनाम) पूजा
करेंगे । और (अन्-आगसः) निष्पाप (अभूम)
हो जायेंगे ॥

भावार्थ—आजका कार्य कलके लिये नहीं रखना
चाहिए । अच्छा कार्य आज ही प्रारंभ करना चाहिए ।
सज्जनोंका सत्कार और विजय प्राप्तिके लिये सदा
प्रयत्न करना चाहिए । पाप कर्म, दुराचार कभी करना
नहीं चाहिए ॥



पाठ २९.

वेदोऽसि । येन त्वं वेद ॥

वेद देवेभ्यो वेदोऽभवः ॥

यजु. २।२१.

अर्थ—तू (वेदः) वेद, अथवा ज्ञानरूप (असि) है । (येन) जिससे (त्वं) तू (वेद) जानता है । (देवेभ्यः) विद्वानोंसे (वेद) तू ज्ञान प्राप्त करो और (वेदः) वेदरूप (अभवः) बना ॥

भावार्थ—हे बालक ! तू ज्ञानरूप है । तेरा विशेष रूप ज्ञान है । इसी लिये तू सब ज्ञान प्राप्त करता है । ज्ञानी गुरुओंके पाससे ज्ञान प्राप्त करके बड़ा ज्ञानी बनो और श्रेष्ठ बनो ।



पाठ ३०.

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बलं मयि धेहि ॥

यजु. अ. १९।९.

अर्थ—हे ईश्वर ! तू (तेजः असि) तेजस्वी है
(मयि) मेरे अंदर तेज (धेहि) स्थापन करो ।
तू (वीर्यं) वीर्यवान है, मेरे अंदर वीर्य स्थापन करो ।
तू (बलं) बलवान है, मेरे अंदर बल स्थापन करो ।

भावार्थ—परमेश्वर तेजस्वी, वीर्यवान अर्थात्
पराक्रमी और बलवान है । उसकी पूजा करनेसे तेज,
वीर्य और बल प्राप्त होता है । इस लिये सबको उचित
है कि वे उसीकी पूजा करें ॥

